|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 2-24), रविवार, 02 मार्च 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/JszDvIcSXWc

दैवी सम्पदाओं के लक्षण

श्री नारायण धुन, श्री हरि, गुरु चरण एवं गीता माँ की वन्दना के मधुर स्वरों के साथ आज के विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

हमारे ऊपर ईश्वर की कृपा के कारण ही हमारा परम सौभाग्य जाग्रत हुआ जिसके फलस्वरूप गीता जी का हमारे जीवन में आगमन हुआ। हम इसे अपने पितृजनों का आशीर्वाद, पूर्व जन्म के सुकृत या किसी महान सन्त के चरणों का प्रसाद मान सकते हैं कि जिस कारण ईश्वर ने गीता पढ़ने के लिए हमें चुना। गीता के समान दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है, ऐसी घोषणा हमारे सन्त महात्माओं द्वारा निरन्तर की गयी है।

आदि शङ्कराचार्य जी भी गीता का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि-

गेयं गीता नाम सहस्रं, ध्येयं श्रीपति रूपमजस्रम्।

जो भगवद्गीता गाएगा या थोड़ी सी भी धारण करेगा, यमराज उसकी ओर देखने का भी साहस नहीं करेंगे।

भगवद् गीता किञ्चिदधीता, गंगा जललव कणिकापीता।

भगवद्गीता का स्वाध्याय करने वाला, इनके सूत्रों का पालन करने वाला सदैव विजयी एवं प्रसन्नचित्त होगा।

जीवन में यदि इसके अर्थ को समझें तो लाभ है ही किन्तु यदि मात्र इसके श्लोकों का पठन करेंगे तो भी हमारा मस्तिष्क तीव्र और शान्त होता है। यह सहस्रों साधकों का अनुभव है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ श्रीभगवान् ने किसी भी मार्ग का उल्लेख नहीं किया है। उदाहरण के लिए यदि आपको मुम्बई से दिल्ली जाना है तो आपके पास कई साधन हैं। जैसे पैदल, साइकिल से, रेलगाड़ी से अथवा हवाई जहाज से। अपने गन्तव्य पर पहुँचने पर आपको वही नगर मिलेगा जहाँ के लिए आप निकले थे। आप किस साधन से पहुँचे, यह महत्त्व नहीं रखता है।

श्रीभगवान् मार्ग या साधन के आग्रही नहीं हैं। आप कैसा तिलक लगाते हैं? यह महत्त्व नहीं रखता है। आप कैसी उपासना करते हैं? इसके स्थान पर आपके जीवन में उस उपासना का क्या लाभ हो रहा है यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बारहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने भक्त के उनतालीस(39) लक्षण बतलाए हैं। यदि आप स्वयं को भक्त समझते हैं तो इन लक्षणों को अपने अन्दर पहचानिये।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।13।।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।14।।

इन लक्षणों को पहचानो। तुम कितना सुन्दर तिलक लगते हो या कितनी सुन्दर आरती गाते हो? कितने घण्टे ध्यान में बैठते हो? इन बातों का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है। ये सब करने के साथ ही इनका परिणाम हमारे जीवन पर दिखाई देना चाहिये ।

पन्द्रहवें अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं

यतन्तो योगिनश्चैनम् पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितं।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य चेतसः।।11।।

अनेक जन्मों तक यत्न करने के बाद भी अगर अन्तरात्मा की शुद्धि न की जाये तो कोई लाभ नहीं होता है।

हमें अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना होगा। हमारे दृष्टिकोण को बदलना होगा। हमारे स्वभाव में अन्तर पड़ना चाहिए। यदि अभी भी हम वस्तुओं को उसी दृष्टिकोण से देखते हैं जैसे पहले देखते थे तो इसका अर्थ यह है कि हमारी साधना ऊपर ऊपर ही चल रही है।

स्वास्थ्य लाभ के लिये जब हम जूस पीते हैं तब ही हमारे स्वास्थ्य में अन्तर आता है। प्रतिदिन जूस से भरे पात्र को देखने मात्र से हमारे स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार, भक्त के गुणों का आस्वादन करना पड़ता है, उन्हें धारण करना पड़ता है, इसलिए सोलहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने छब्बीस दैवीय गुणों की सूची दी है।

गत सप्ताह हमने पहले श्लोक में आठ दैवीय गुण देखे थे- अभय, सत्त्व की शुद्धि, ध्यान योग की स्थिति, दान, दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप और आर्जव।

हे अर्जुन, तुम स्वयं को दैवीय गुणों से युक्त बताते हो तो देखो तुममें अभय है कि नहीं, दान करते हो कि नहीं? तुम इन्द्रियों का दमन करते हो कि नहीं? बिना किसी कामना के तुम कर्त्तव्यपालन करते हो या नहीं? थोड़ा तप करते हो या नहीं?

अब ग्रीष्म ऋतु में बहुत से लोग (AC) के बिना नहीं रह पाते हैं। इस पर से यदि विद्युत आपूर्ति रुक जाये तो पङ्खा बन्द होने से पहले उनके शरीर से पसीना बहने लगता है, उनकी अति तीव्र प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार के व्यक्ति तप नहीं कर सकते हैं। तप करना हो तो अधिक तापमान के समय एक से दो घण्टे तक विद्युत आपूर्ति होने के बाद भी पङ्खा बन्द करके बैठें। देखें हममें तप है या नहीं? एकाध समय भोजन न करके देखें। हमारे द्वारा, मिली हुई अनुकूलता को त्यागना तप का परिचायक है। विभिन्न भोग विषयों में लगे हुए मन का व्यक्ति कभी तप नहीं कर सकता है। तप करने के लिए जीवन में थोड़ा सहन करने की प्रवृत्ति को अपनाना होगा।

तितिक्षा- विवेक चूड़ामणि में आदि शङ्कराचार्य जी ने छः साधनों में तितिक्षा को महत्त्व दिया है। यदि मन के अनुकूल कोई बात नहीं हो रही है तो सहन करो और यह सहनशीलता स्वाभाविक होनी चाहिए। कुछ लोग सहन तो करते हैं किन्तु इस सहनशीलता का गुणगान वे स्वयं ही सबसे करते रहते हैं। हमें वस्तुओं को सरलता और प्रसन्नता से सहन करना है। अपने मस्तिष्क पर इसका भार नहीं रखना है। कोई दूसरा व्यक्ति कभी आपको महान नहीं कहता है। तप करने के लिए हिमालय अर्थात् एकान्त में जाने की आवश्यकता नहीं होती है। प्रतिकूल परिस्थिति में प्रसन्न रहना भी तप के समान ही है।

आर्जवम् तो माता शबरी की कथा के द्वारा ही दिखा सकते हैं। हम दम्भ में अपना जीवन जीते हैं। सबको बताते हैं कि हम भोजन नहीं कर पा रहे हैं और हमारा सम्पूर्ण ध्यान भोजन पर ही लगा हुआ है। हम जो नहीं हैं, स्वयं को दूसरों के सामने वही प्रदर्शित करते हैं। जीवन सरल होना चाहिए। जितना धन हमारे पास है, उससे ज्यादा धनी हम स्वयं को क्यों दिखायें? जितना ज्ञान है उससे ज्यादा ज्ञानी स्वयं को क्यों प्रस्तुत करें? अधिक दिखने-दिखाने से क्या परिवर्तन आ जाएगा? हम स्वयं ही स्वयं को कल्पनातीत करते हैं। हम कितनी भी मूल्यवान वस्तुओं का क्रय करें, उनसे मूल्यवान वस्तुएँ भी संसार में उपलब्ध हैं। एक फोन से अधिक मूल्यवान दूसरा फोन। एक घर से बड़ा दूसरा घर। हम कितना भी बड़ा घर बना लें, उससे भी अच्छा और बड़ा कोई दूसरा घर हो सकता है। हम जिस स्थान पर हैं उससे थोड़ा ऊपर वाला हमें और अधिक अच्छा लगता है। जीवन सरल होना चाहिए। हमें उच्चतम की आवश्यकता नहीं है।

16.2

अहिंसा सत्यमक्रोध:(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम्।।16.2।।

अहिंसा, सत्य भाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग-द्वेष जनित हलचल का न होना, चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, अकर्तव्य करने में लज्जा, चपलता का अभाव।

विवेचन - केवल माँसाहारी न होना ही अहिंसा नहीं है। मनसा, वाचा तथा कर्मणा अर्थात् मन से, वाणी से और कर्म से मेरे द्वारा किसी को कष्ट न पहुँचे, यह अहिंसा है। किसी को अप्रिय वचन बोलकर हम प्रसन्न होते हैं, यह हमारी वाणी द्वारा की गई हिंसा है। यदि हमारे शब्दों द्वारा अथवा व्यवहार द्वारा दूसरों को कष्ट हो रहा है तो यह हिंसा है। कुछ लोगों अपने व्यवहार से दूसरों को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें यह नहीं समझ में आता कि उनके द्वारा लोगों को कष्ट पहुँचता है।

आप मन्दिर जाते हैं वहाँ अपनी चप्पलें रखने के लिये दूसरों की चप्पलें एक ओर करके रख दीं। यह भी एक प्रकार की हिंसा है - कर्म की हिंसा।
यदि हम अपना कार्य करने के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं तो हम हिंसा करते हैं।

सत्य - सारे दैवीय गुणों की रीढ़ की हड्डी सत्य है, किन्तु लोग सत्य का दुरुपयोग करते हैं।

नीति शास्त्र कहता है-

सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यम् अप्रियम्।
सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो। जिस सत्य से किसी को कष्ट पहुँचे ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए।

सत्रहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने कहा है कि यदि सत्य बोलना है तो उसके दो गुण और साथ में लो।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
सत्य प्रिय और हितकारी होना चाहिए। वही सत्य बोलना चाहिये जो प्रिय और हितकारी हो ।

कुछ लोग प्रिय लगने वाला असत्य सत्य बोलते हैं, यह भी ग़लत है। हमेशा प्रिय लगने वाला असत्य बोलकर दूसरों की चापलूसी करने का गुण भी ठीक नहीं है। ऐसे लोग सामने भिन्न और पीठ पीछे भिन्न होते हैं, इसलिए सदैव सत्य बोलने का अभ्यास करना चाहिये। सत्य के साथ चलने का मार्ग थोड़ा कठिन अवश्य होता है परन्तु एक बार यदि आपने उस कठिनाई पर विजय पा ली तो फिर आपका जीवन सरल हो जाता है। सत्य के साथ जीवन जीने वाले व्यक्ति का जीवन आनन्ददायक व उत्कृष्ट हो जाता है, भले ही थोड़े समय के लिए वो कष्ट में दिखे। ईश्वर की प्राप्ति ऐसे ही व्यक्तियों को होती है।

अक्रोध- अभी यदि मैं हाथ खड़े कराऊँ तो सबके हाथ खड़े हो जायेंगे। क्रोध और अहङ्कार की विशेषता है कि आप जितना करेंगे, वे बढ़ते जायेंगे और जितना छोड़ते जायेंगे वे कम हो जायेंगे।

एक पति पत्नी सदैव विवाद करते रहते थे। उनका पड़ोसी बहुत परेशान रहता था। सुबह सात बजे से लेकर नौ बजे, पति के कार्यालय जाने तक नित्य उनका विवाद चलता रहता था। एक बार रविवार के दिन अवकाश था तो उनका विवाद चलता ही रहा। उनका पड़ोसी अत्यधिक त्रस्त हो गया और फिर (Ring the bell) की नीति के अनुसार घरेलू हिंसा बचाने के लिए उसने द्वार की घण्टी बजायी। द्वार खुलने पर घर के स्वामी ने कारण पूछा तो पड़ोसी ने बताया कि वह उनकी कुशल पूछने आया है। ध्यान हटने से उस व्यक्ति का क्रोध थोड़ा शान्त हुआ। उनकी चर्चा और आगे बढ़ने पर पड़ोसी ने पूछा कि आपके घर से अत्यधिक ध्वनि सुनाई दे रही थी तो वह व्यक्ति पुनः क्रोध में आ गया। वह व्यक्ति अपनी पत्नी को भला-बुरा कहने लगा। यह सुनकर उसकी पत्नी बाहर आ गई। वह भी उस व्यक्ति को अपशब्द बोलने लगी। पड़ोसी फिर त्रस्त हो गया और बोला कि आप दोनों आज के विवाद का कारण बतलाइये। इस बात पर वो दोनों चुप हो गये। बार-बार पूछने पूर वह व्यक्ति कहने लगा कि छः-आठ घण्टे से विवाद के कारण हमें अब स्मरण नहीं है कि विवाद किस कारण से उत्पन्न हुआ था।

ऐसा ही होता है कि कभी कभी विवाद करते-करते हमें मूल कारण का विस्मरण हो जाता है और बाद में कारण स्मरण आने पर लज्जा आती है। क्रोध को जितना बल देंगे वह बढ़ता ही जाता है। दियासलाई जलाने पर जितना कपास देंगे सारा स्वाहा होता जाएगा और आग बढ़ती जाएगी। ठीक इसी प्रकार से क्रोध बढ़ाने से बढ़ेगा और दबाने से समाप्त हो जायेगा।

प्रश्न: क्रोध क्यों आता है?

उत्तर: क्रोध की विशेषता है कि क्रोध एक अवलम्बित विकार है। हमें बैठे-बैठे सहसा क्रोध नहीं आता है। क्रोध आने के पीछे एक कारण होता है। **कामना, अहङ्कार, मोह या लोभ में विघ्न पड़ने पर ही क्रोध आता है।** हम जैसा चाहते हैं वैसा न होने पर क्रोध आता है। हमारे अहङ्कार को ठेस लग जाने पर क्रोध आता है। हम जिसके मोहपाश में हैं, उस व्यक्ति के दूर हो जाने पर हमें क्रोध आयेगा। जो वस्तु हमें अत्यधिक प्रिय है, उसके छिन जाने से हमें क्रोध आयेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि हम ऐसा सोचते हैं कि सब कुछ हमारे अनुसार ही चलना चाहिए नहीं तो हमें क्रोध आ जायेगा।

प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति के अनुसार भी सभी कुछ शत प्रतिशत नहीं होता है, फिर हम तो अति साधारण लोग हैं। इस अव्यावहारिक कामना के कारण हमारा क्रोध बढ़ता है। सब कुछ हमारे अनुसार हो, यह कामना त्याग देनी चाहिये । एक मन्त्र है उसे अपने जीवन से बाँध लेना चाहिये।

'ॐ इग्नोराय नमः'

वस्तुओं और परिस्थितियों को अनदेखा करना चाहिये।

त्याग - हमारे पास जो वस्तुएँ हैं उनका हम सहजतापूर्वक त्याग कर सकें। उदाहरण के लिए, मैनें चाय का त्याग कर दिया है। यह इच्छापूर्वक त्याग है, परन्तु यदि मैं कुछ लोगों के साथ बैठा हूँ और सबको चाय दी गयी और मुझे नहीं। मान लो उस व्यक्ति ने भूलवश मुझे नहीं पूछा तब भी मैंने उस बात पर ध्यान नहीं दिया और चाय नहीं पी। इसे सहज त्याग कहते हैं। कुछ मिलने वाला था, नहीं मिला तो भी मैं सहज हूँ, यह त्याग है।

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हेतु ध्वज लहराना ये वाम पन्थी नीतियाँ हैं। यह पश्चिमी सभ्यता और दर्शन है। भारतीय जीवन दर्शन में ऐसी प्रथा नहीं है। किसी भी पुराण या ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। हमारे राष्ट्र में इसका विपरीत दर्शन है। हमारे दर्शन में श्रीरामजी वन को जाते हैं तो श्रीभरतजी उनके पीछे-पीछे आकर उन्हें मनाते हैं कि आपका राज्य आप ही सम्भालिये। फिर श्रीरामजी की चरण पादुका ले जाकर उनके आशीर्वाद से राज्य का सञ्चालन करते हैं। हम अपने अधिकारों के लिये लड़ने वाली संस्कृति के लोग नहीं हैं। हम दूसरों के अधिकारों के लिये अपने अधिकार को त्यागने वाले लोग हैं।

शान्ति - बारहवें अध्याय में हमनें पढ़ा था-

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्

अर्थात् त्याग से ही शान्ति आती है। जो व्यक्ति त्याग करेगा उसके जीवन में शान्ति आयेगी। यदि आप त्याग करना नहीं जानते तो आपके जीवन में कभी शान्ति नहीं आयेगी। आपका जीवन घोर अशान्ति से भर जायेगा। अपने अधिकारों की चिन्ता करने वाला व्यक्ति कभी शान्ति से नहीं सो सकता है।

प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी महाराज का सूत्र है-
दूसरों का कर्त्तव्य मेरा अधिकार नहीं है - यह शान्तता का सूत्र है।

यदि कोई अपना कर्त्तव्य नहीं करेगा तो इसकी चिन्ता मुझे नही करनी है। विधी सबको फल देगी। किसी को उसके कर्त्तव्य का ज्ञान कराना हमारा कार्य नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि आपके समझाने से वह व्यक्ति समझ जाए। इसके विपरीत यदि वह आपकी बात नहीं मानेगा तो आपको अशान्ति मिलेगी।

अपैशुनम्- चुगली करना, रसयुक्त दोष है अर्थात् वह दोष जिसमें अति आनन्द मिलता है। जैसे कभी हमें घाव हो जाये तो उसमे खुजली होती है। बार-बार मना करने पर भी हम उसे खुजलाये बिना नहीं रह पाते हैं। हमें ज्ञात है कि खुजलाने से हमारा घाव बिगड़ सकता है फिर भी कुछ समय के लिये खुजलाने से हमे शान्ति मिलती है तो हम अपना हाथ नहीं रोक पाते। ठीक इसी प्रकार से चुगली या निन्दा करने से बुरा ही होगा किन्तु फिर भी हम स्वयं को निन्दा रस का आस्वादन करने से रोक नहीं पाते हैं।

उदाहरण के लिये, कुछ महिलाएँ अपने घर कार्य करने वाली स्त्री के आने पर सबसे पहले उसे बिठाकर चाय पिलाते हुये उससे आस-पास का समाचार लेती हैं। कुछ लोग फोन पर पर अकारण ही इधर-उधर के व्यक्तियों की निन्दा करते है, यह गलत है।

निन्दा न करने को अपैशुनम् कहते हैं। यह दैवीय गुण है।

दया - सभी जीवों पर दया करनी चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता हमसे अधिक है तो वह वस्तु उसे देने को दया कहते हैं।

मान लीजिये दो भाई हैं। एक को किसी वस्तु आवश्यकता है तो दूसरे ने उसे दे दी। अकारण ही आवश्यकता न होते हुये भी वह वस्तु किसी अन्य को न देना, मात्र इसलिये कि वह आपके अधिकार की वस्तु है, यह अत्यन्त अनुचित है। दया करते समय पात्र की आवश्यकता का विचार करना चाहिये। दया करते समय उपदेश नहीं देना चाहिये। यह घाव पर नमक छिड़कने जैसा है। यदि कोई व्यक्ति कष्ट में है तो उस समय मात्र चाहिये उसकी सहायता करनी चाहिए। उस समय उसे परामर्श देने से उसे और कष्ट पहुँचता है।

अलोलुत्वम् - अलोलुप्त्वम् का अर्थ है किसी दूसरे की वस्तु को देखकर लोभ न करना। किसी के घर जाकर उसके परदे, सोफा, फोन यहाँ तक कि दामाद अथवा पुत्रवधु तक को देखकर यह कामना करना कि काश ऐसा मुझे भी मिल जाये। कभी-कभी तो हमें आवश्यकता नहीं भी होती है फिर भी मात्र इसलिये कि वह वस्तु हमें अच्छी लगी, हम उस वस्तु की इच्छा करने लगते हैं।

कुछ लोग बिना मूल्य बँटने वाली प्रचार पुस्तिका (Pamphlet) भी लोभ में ले लेते हैं, भले ही उन्हें उसका उपयोग न ज्ञात हो। मन्दिर में प्रसाद बँट रहा है तो एक के स्थान पर दो ले लिये। यह लोलुपता है। आलोलुपता दैवीय गुण है। यह गुण व्यक्ति के नेत्रों से पता चल जाता है।

मार्दवम् – कोमलता, यह दैवीय गुण है।

कुछ लोग हर कार्य को शीघ्रता से और ध्वनि के साथ करते हैं। उनके व्यवहार और वाणी में कोमलता नहीं होती है। वे अपना मुख भी कठोर बनाकर रखते हैं। अपनी वाणी को औषधीय लेप के समान बना लेना चाहिए जो हर व्यक्ति को प्रसन्न करे। अपने आचरण, वाणी और व्यवहार में कोमलता लानी चाहिये। विचारों से कठोर और आचरण में मृदु होना चाहिये।

ह्रीर - मेरे द्वारा कोई न करने वाला कार्य हो गया। मेरे द्वारा कोई अनुचित आचरण हो गया। इस कार्य के लिये मेरे पास बहाने है या लज्जा है? अनुचित कार्य या व्यवहार हो जाना बहुत बड़ी बात नहीं है, यह देखना है कि उस पर लज्जा आ रही है या हम बहाने बनाकर अपनी गलती को छुपा रहे हैं?

मनुज गलती का पुतला है
जो अक्सर हो ही जाती है
मगर करले ठीक गलती को
उसे इन्सान कहते है।
पराया दर्द अपनाए
उसे इन्सान कहते हैं।

अपने अपराध के लिये कारण देना अदैवीयता है। अपने अनुचित कृत्य पर लज्जित होना दैवीय गुण है। जो व्यक्ति बहाने बनाता है उसकी ग़लती कभी ठीक नहीं होती है। इसके विपरीत जो लज्जा करता है, जिसे आत्मग्लानि होती है, वही स्वयं में सुधार ला सकता है।

अचापलम्- जीवन में चञ्चलता का अभाव। यह नेत्रों से पहचाना जाने वाला गुण है। कुछ व्यक्तियों के नेत्रों में चपलता बहुत अधिक होती है।
एक बड़े उत्तम सन्त हैं, महन्त क्षमारामजी शास्त्री। क्षमारामजी शास्त्री सात-सात घण्टे रामायण का पाठ करते हैं । आदरणीय विवेचक जी ने स्वयं भी उन उनके साथ नह्व पारायण के पाठ किये हैं। यह उनकी विशिष्टता है कि एक ही आसन में पूरी रामायण-महाभारत की पुस्तक पर दृष्टि रखते हुए, बिना हिले-डुले सम्पूर्ण पढ़ते हैं।

यह अचञ्चलता या अचपलता है। अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण है।

16.3

तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।।

तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न होना (और) मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! (ये सभी) दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं -हे अर्जुन हमारे जीवन में तेज आना चाहिये।

प्रश्न : तेज कैसे आयेगा?
उत्तर : भोजन से रस बनेगा। रस से रक्त बनेगा। रक्त से माँस बनेगा। माँस से मज्जा (bone marrow) बनेगी। मज्जा से अस्थि। अस्थि से वीर्य। वीर्य से ओज और ओज से तेज। यही सप्तधातु प्रक्रिया है।

हमारा कितना प्रभाव है, यह हमारे तेज पर निर्भर करता है। हमारे परिवार या समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनकी बात हर कोई मान लेता है, सभी उनका आदर करते हैं। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उस व्यक्ति में तेज है। किसी-किसी व्यक्ति की बात कोई नहीं मानता है क्योंकि उनकी वाणी में तेज नहीं है। अपने जीवन को तेजस्वी बनाना चाहिए।

क्षमा- यह ऐसा गुण है जो लेना सब चाहते हैं परन्तु देना कोई नहीं चाहता।

स्वयं से ग़लती होने पर हमें क्षमा की अपेक्षा रहती है किन्तु दूसरे के द्वारा गलती होने पर हम न्यायाधीश बन जाते हैं। हमें इसका विपरीत करना है। अपनी गलती के लिये न्यायाधीश और दूसरे की गलती के लिये वकील बनना है।

कुछ लोग क्षमा तो कर देते हैं पर जिस व्यक्ति को क्षमा किया था उसे बारम्बार यह अनुभव कराते हैं कि मैंने तुम्हें एक बार क्षमा किया था। मान लीजिये कोई माता अपने शिशु को पुनः-पुनः कहे कि उस दिन मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया था तो वह शिशु भी सोचेगा के इससे तो अच्छा उसी दिन सब कुछ कह देतीं, क्षमा नहीं करती।

अङ्ग्रेजी में एक कहावत है- **Forgive and forget.**

क्षमा करो और भूल जाओ। सच्ची क्षमा वही है जहाँ मैं क्षमा करके भूल जाऊँ। यदि क्षमा करने के बाद भी मुझे बार बार यह स्मरण हो कि मैंने क्षमा किया था तो व्यर्थ है। स्वयं को क्षमा मत करो किन्तु दूसरों को सदैव क्षमा करो।

धृति - धैर्य जीवन में अवश्य आना चाहिये। आज के समय में किसी के पास धैर्य नहीं है। मैं शीघ्रता से कुम्भ में पहुँच जाऊँ। शीघ्रता से स्नान करके श्रीभगवान् के दर्शन हो जाएँ। ऐसा व्यक्ति कुम्भस्नान करके भी दुःखी रहता है। सारी घटनाओं को प्राकृतिक रूप से ही घटित होने देना चाहिए। कुछ लोग कुछ समय गीता जी पढ़ते हैं और श्रीभगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

यदि हम पौधे में सौ घड़े जल डाल दें तब भी उसमें फल या फूल ऋतु आने पर ही आयेंगे, जब उनका आना निश्चित है। किसी भी कार्य को प्राकृतिक रूप से होने में जितना समय लगता है वह लगेगा ही। जिस वृक्ष को फल आने में पाँच वर्ष लगने हैं तो उसमें पाँच वर्ष के पश्चात् ही फल लगेंगे।

शुचिता / शौच - इस शब्द का अङ्ग्रेजी अनुवाद नहीं है। (Hygiene and sacred) स्वच्छता और पवित्रता इन दोनों के मिलाकर जो शब्द बनेगा वह है शुचिता। यह दैवीय गुण है।

कोविड काल में हमने (Sanitizer) का उपयोग सीखा। अभी भी कुछ व्यक्ति (Sanitizer) से हाथ स्वच्छ करके भोजन करने लगते हैं। कीटाणु मारने हेतु तो (Sanitizer) का उपयोग उचित है किन्तु मरने के बाद वे कीटाणु आपकी हथेलियों पर ही रह जाते हैं। जब आप उन्हीं हाथों से भोजन करते हैं तो मृत कीटाणु भोजन द्वारा उदर में चले जाते हैं।

स्वच्छता एक बात है किन्तु पवित्रता एक अलग बात है। (Bisleri) बोतल बन्द पानी स्वच्छ होता है और अभी यह बताया गया था कि सङ्गम का पानी कम स्वच्छ है किन्तु मरने वाले के मुख में तो गङ्गाजल ही डाला जाएगा, बोतलबन्द जल नहीं क्योंकि गङ्गाजल पवित्र है।

हमारा आचरण पवित्र होना चाहिये। स्वच्छता के साथ-साथ पवित्रता भी आवश्यक है। बहते जल में हाथ धोने का अपना अलग महत्त्व है। आजकल भोजन के पश्चात् हाथ धोने के स्थान पर टिशू से पोंछने का प्रचलन अनेक स्थानों पर हो गया है। वह स्वच्छता भी नहीं है और पवित्रता भी नही है। इस आचरण से हमें ईश्वर प्राप्ति नहीं होगी।

नातिमानिता - स्वयं को ही सब कुछ मानना। स्वयं पर अहङ्कार करना अर्थात् अपने पास उपलब्ध वस्तुओं पर अहङ्कार करना। ऐसा व्यक्ति स्वयं भी दुःखी रहता है और दूसरों को भी दुःखी करता है। अपना मान रखना अच्छा गुण है किन्तु प्रत्येक स्थान पर अपना ही मान करवाने की अपेक्षा रखना, स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करना यह अनुचित है।

ऐसा व्यक्ति मात्र यही देखता है कि उसका अपमान कब और कहाँ हुआ था? लोग समझाते भी हैं कि हमारा ध्यान नहीं था, क्षमा भी माँगते हैं किन्तु वह व्यक्ति किसी की नहीं सुनता है। जिसका स्वभाव ही नातिमानिता का हो जाता है, वह प्रत्येक स्थान पर वह अपने मान की ही अपेक्षा करता है। इससे वह दुःखी रहता है। हमें अनातिमानिता रखनी चाहिए।

हे अर्जुन! ये छब्बीस गुण दैवीय सम्पदा के साथ उत्पन्न हुये व्यक्ति के लक्षण हैं।

16.4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् यहाँ दम्भ, दर्प और अभिमान - ये तीन शब्द कहते हैं।

अभिमान का अर्थ है स्वयं पर गर्वित होना।
दर्प का अर्थ है अपनी वस्तुओं पर गर्व होना ।
दम्भ जब झूठा दिखावा करते हैं।

मान लीजिए नित्य हम थोड़े समय की अल्प पूजा करते हैं, किन्तु किसी अतिथि के आने पर उसे दिखाने के लिये लम्बे समय तक पूजा करते रहें, यह दम्भ है। जो हम नहीं हैं वह दिखाना, यह दम्भ होता है। यह आसुरी प्रवृत्ति है।

क्रोध - क्रोध आसुरी सम्पदा का लक्षण है। कई बार हमें अपने क्रोध के क्षण में किये गये व्यवहार पर पश्चाताप होता है। हमें बाद में दुःख होता है। बहुत बार इससे हमारी हानि हो जाती है।

पारुष्य अथवा कठोरता - मार्दवम् का विलोम शब्द कठोरता है।

कुछ व्यक्ति कठोर हृदय के होते हैं। केदारनाथ में जब बाढ़ आयी थी, तब एक सज्जन कहने लगे कि वहाँ के लोगों के साथ ऐसा ही होना चाहिए था। वे गङ्गा जी के तट पर मदिरापान करते थे। उन लोगों को सहायता नहीं मिलनी चाहिये। इस समय यह सोचना कितनी कठोरता का चिह्न है।
वहाँ के लोग कितने कष्ट में हैं। उनका घर-द्वार चला गया, बच्चे भूखे हैं।
लोग अपने परिजनों, सम्बन्धियों, पशुओं, वृक्षों तक के साथ कठोर व्यवहार करते हैं। कुछ लोग घर में काम करने वाले व्यक्ति के अस्वस्थ होने पर उन्हें औषधि खिलाकर भी उनसे कार्य करवाते हैं। उन्हें विश्राम नहीं करने देते हैं।

अज्ञानम्- किसी वस्तु का ज्ञान न होना अज्ञान नहीं है अपितु किस वस्तु का ज्ञान नहीं, यह भी न जानना अज्ञान है।

ज्ञान न होने पर भी यदि किसी व्यक्ति को लगता है कि उस बहुत ज्ञान है, यह अज्ञान का चिन्ह है।

सुकरात ने कहा, "मैं जितना पढ़ता गया, उतना ही जानता गया मैं क्या नहीं जानता हूँ।

हमें जितना ज्ञान प्राप्त होता है उतना ही अपनी अज्ञानता का आभास होता जाता है। अज्ञानता भी आसुरी गुण है।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन- दैवी सम्पदा मुक्ति के लिये और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिये मानी गयी है। हे अर्जुन, तुम इन सभी दैवीय गुणों से युक्त हो। अर्जुन को श्रीभगवान् ने गीता का उपदेश इसी पात्रता पर दिया था कि वे सारी दैवीय सम्पदाओं से युक्त थे।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन- हे अर्जुन, इस प्रकृति में दो ही प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। दैवीय गुणों से युक्त और आसुरी गुणों से युक्त। दैवीय प्रकृति को मैंने विस्तार से बतला दिया है अब आसुरी प्रवृति वाले मनुष्य के बारे में विस्तार से सुनो।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के बारे में नहीं जानते है इसलिये उनमें बाहर व भीतर की शुद्धि नहीं होती है। न उनका आचरण श्रेष्ठ होता है, न वे सत्य का भाषण करते हैं।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचन- आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य असत्य का साथ देते है, श्रीभगवान् की सत्ता को नहीं मानते। वे इस संसार को आश्रयरहित मानते हैं। वे इस संसार को कामाश्रित मानते हैं। उनके अनुसार यह सृष्टि (Big Bang theory) पर बनी है। पहले सब वानर थे और अब मानव बन गए हैं। अभी जो वानर हैं वे कब तक मानव बनेंगे पता नहीं?

ऐसी बातें वामपन्थी दल के व्यक्ति करते हैं। उनके प्रत्येक विचार में वाम बुद्धि का परिचय होता है। नवरात्रि में जब सम्पूर्ण संसार देवी माँ की उपासना करता है तब ये लोग महिषासुर की वन्दना करते हैं।

देश विदेश से साठ-पैंसठ करोड़ लोग महाकुम्भ में स्नान करने आए वहाँ भी इन्होंने मृत्यु कुम्भ की ही कल्पना की। ऐसे लोग कुछ भी शुभ देख और समझ नहीं पाते हैं।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन- इस मिथ्या ज्ञान को मानकर जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है, ऐसे मन्दबुद्धि, क्रूरकर्मी और अपकार करने वाले और दूसरों का बुरा करने वाले मनुष्य केवल सब का नाश करते हैं।

वामपन्थियों ने आज तक कभी किसी के साथ भला नहीं किया है। पिछले सौ वर्षों का इतिहास उठाकर देखें तो हमें यह पता चलता है कि इन्होंने केवल नाश किया, कभी कोई निर्माण नहीं करवाया। चाहे वह कोई भी देश क्यों न हो।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन- ये दम्भ, मान और मद से युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं के आश्रय से, अज्ञान के मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करते हैं और भ्रष्ट आचरण करके इस संसार में विचरण करते हैं। ये अपने ही बनाए हुए सिद्धान्तों पर चलते हैं। जैसा कि पहले भी बताया गया है कि, महिषासुर की पूजा करते हैं।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन- आसुरी प्रवृत्ति के लोग मृत्यु पर्यन्त रहने वाली असङ्ख्य चिन्ताओं का आश्रय लेकर भोगों में फँसे रहनेवाले और सांसारिकता को ही सुख मानने वाले होते हैं। ऐसे लोग संसार के सारे व्यसन करते हैं। अनैतिक आचरण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन- आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य, काम और क्रोध के अधीन होकर, विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धन कमाने का जो भी पाप करते हैं, वह आशाओं के कारण ही होता है। आशाएँ हमें बीमार कर देती हैं। ये कभी समाप्त नहीं होतीं।

ये इच्छाएँ कोई व्यक्ति, वस्तु अथवा परिस्थिति हो सकती है। इनमें से व्यक्ति और परिस्थिति तो हमारे नियन्त्रण में नहीं हैं किन्तु वस्तुएँ खरीदना हमारे नियन्त्रण में है। हम जब छोटे थे तब हमारी अलग इच्छाएँ थीं और अब बड़े होने के बाद और बड़ी-बड़ी इच्छाएँ हैं।

जब तक घर नहीं होता है, तब तक हमें घर की कामना होती है। जब घर बन जाता है तब थोड़े बड़े घर की। एक मोबाइल के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा। इस प्रकार एक आशा पूर्ण होने पर अगली आशा से हम बँधे हुए हैं।

एक बालक ने पिताजी से चिड़ियाघर ले जाने के लिए कहा। अब अगर पिताजी ले जाते हैं तो अगली बार वह कोई और इच्छा लेकर उनसे हठ करेगा और यदि नहीं ले गए तो रोएगा।

सुख की आशा से कोई व्यक्ति कभी सुखी नहीं होता है। आशाओं को पूर्ण करने हेतु व्यक्ति कई अनैतिक कार्य करता है। आशा पूर्ण करने में निर्धन हो या धनवान दोनों की एक सी स्थिति बनी हुई है। सब अपनी परिस्थिति से ऊपर की ओर उठना चाहते हैं।

सन्तों का कहना है कि सुखी होना है तो आशा की रस्सी को बाँध दो।

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

विवेचन- आसुरी प्रवृत्ति के लोग यह सोचते हैं कि आज मैंने यह प्राप्त कर लिया है और अब अगले मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास इतना धन है और फिर मुझे यह प्राप्त हो जाएगा। जिसके साथ ऐसा होता है वह फँसता ही जाता है।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रुः(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचन- मैंने एक शत्रु को मार दिया है और अब दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा। मैं ही ईश्वर हूँ और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ। मैं सब सिद्धियों से युक्त हूँ।

हिरण्यकश्यपु की कथा को स्मरण करिये। उसने ईश्वर की उपासना बन्द करवाकर अपनी ही पूजा करवाना आरम्भ कर दिया था।

ऐसे व्यक्ति स्वयं को बलवान और सुखी समझते हैं। यदि इनकी आशायें पूरी नहीं होती हैं तो ही अच्छा है, नहीं तो ये राक्षसी प्रवृत्ति के हो जायेंगे।

16.15, 16.16

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।
(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन- मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान भाग्यवान् दूसरा कौन है?

यहाँ दुर्योधन एवं कर्ण का स्मरण कीजिए। उन्हें भी यही लगता था कि वे बलशाली हैं और उनका अन्त नहीं हो सकता है।

मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा और आमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञान के मोह में रहनेवाले और अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले और विषयभोगों से आसक्त रहने वाले आसुरी लोग अपवित्र होकर नरक में गिरते हैं।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन- ऐसे लोग स्वयं को ही श्रेष्ठ मानने वाले, घमण्डी तथा मान के मद से युक्त होकर नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्र विधि के बिना ही आचरण करते हैं। आज के समय में ऐसे पाखण्डी बहुत हैं। आजकल श्रीभगवान् की पूजा के पण्डाल बहुत लगने लगे हैं, जहाँ न पूजा शास्त्र विधि के अनुसार होती हैं न भजन। वहाँ न तो अन्नदान होता है, न ही कोई सेवा कार्य। आयोजक श्रीभगवान् जी का तो छोटा सा चित्र लगाते हैं और स्वयं का बहुत बड़ा। गानों के नाम पर कर्णभेदी गाने बजाए जाते हैं।

धार्मिक आयोजन के पीछे स्वयं की प्रशंसा करवाने का उद्देश्य अत्यन्त अनुचित है।

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन- ऐसे लोग घमण्ड, बल, अहङ्कार और क्रोध में डूबे रहते हैं और सबकी निन्दा करते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने एवं दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाला होता है।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन- ऐसे अधर्मी और पाखण्डियों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ। अलग-अलग योनियों में जीव को अलग अलग यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

पड़ोसी देश में जो हम देख रहे हैं, ये वही आसुरी प्रवृत्ति के लोग हैं जो उत्पात मचा रहे हैं।

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन - हे अर्जुन, ऐसे मूर्ख मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्म तक आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं और उससे भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरक में पड़ते हैं।

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभः(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, हे अर्जुन! अब मैं तुम्हें जिन तीन विषयों के बारे में बता रहा हूँ, उन्हें यदि नियन्त्रित कर लिया जाये तो अति उत्तम है, अन्यथा ये आत्मा को अधोगति की ओर ले जाने वाले हैं। काम, क्रोध और लोभ, इन तीनों के अधीन होकर मनुष्य का पतन सदैव सुनिश्चित है।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- हे कौन्तेय, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त पुरुष का कल्याण होता है। इससे मनुष्य परमगति को प्राप्त करता है।

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन- जो शास्त्रविधि का त्याग करके अपनी इच्छानुसार आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त करता है, न परमगति को। शास्त्र विधि की उपेक्षा करने से न सुख मिलेगा, न परमगति और न सिद्धि।

ईश्वर के नाम की आड़ में गलत कार्य करने से सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होगी। आजकल लोग असत्य बोलकर धर्म के नाम पर दान लेकर उसका दुरुपयोग करते हैं।

अपने परिवार की परम्पराओं का पालन करना चाहिए। शास्त्र का अनुसरण वाले सन्तों के अनुसार कार्य करने से शास्त्र पालन होता है।

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन- हे अर्जुन, शास्त्रों में लिखी बातें ही अनुसरण करने योग्य हैं, इसलिये उनका ही अनुसरण करना चाहिए क्योंकि शास्त्रों में ही कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था का प्रमाण निहित है।

आपको लगेगा कि आप तो सारे शास्त्रों के बारे में जानते ही नहीं हैं फिर आप उनका पालन कैसे करेंगे?

एक बात का ध्यान रखिए, हम सन्तों के प्रवचन में जो बातें सुनते हैं, जो गीताजी में पढ़ते हैं, ये सारी बातें शास्त्र युक्त बातें हैं। हमारी कुल परम्परा में जो भी विधि-विधान की बातें बताई गई हैं, वे सब भी शास्त्रोक्त बातें हैं।
श्री रामायण अथवा श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़कर आप शास्त्रों की बातों को जान सकते हैं। उनमें जो भी लिखा है, वह शत-प्रतिशत सत्य है।

हरि नाम स्मरण के साथ इस गूढ़ विवेचन का समापन हुआ।

विचार-मन्थन (प्रश्नोत्तर)

प्रश्नकर्ता - विवेक जी
प्रश्न - भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को छब्बीस (26) दैवीय गुणों से युक्त बताया। रावण, दुर्योधन आदि जो राक्षसी प्रवृत्ति के साथ जन्में हैं तो उनको भी सन्मार्ग पर आने का अवसर था या नहीं?
उत्तर - प्रारब्ध तो जन्म स्थान निश्चित करता है। श्रीभगवान् ने सभी को कर्म का स्वातन्त्र्य दिया है। वे भी तीनों दुर्गुणों (काम, क्रोध, लोभ) का त्याग कर सन्मार्ग पर आ सकते थे। हमने देखा है रावण के घर में विभीषण और हिरण्यकश्यपु के घर प्रह्लाद जी ने राक्षसी वातावरण में रहते हुए भी दैवीय गुणों को धारण किया। रावण, दुर्योधन, हिरण्यकश्यपु भी त्रिदोषों का त्याग करके सन्मार्ग पर आ सकते थे। काम, क्रोध, लोभ पर इन तीनों का नियन्त्रण नहीं था।

अच्छे स्थान पर पैदा होकर भी अच्छे नहीं बन जाते। पुलस्त्य ऋषि का पुत्र है रावण परन्तु ऋषि सन्तान होने पर भी राक्षसी प्रवृत्ति का बना। वहीं हिरण्यकश्यपु के पुत्र होकर भी प्रह्लाद जी भक्त शिरोमणि बनें।

श्रीभगवान् ने छठवें (6th) अध्याय में स्वयं बताया है कि मनुष्य अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे। अपने को अधोगति में न डाले।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।6.5।।

प्रश्नकर्ता - मीनू शर्मा जी
प्रश्न - आपने गुणों में लालसा त्यागने की बात कही पर श्रीभगवान् की प्राप्ति की लालसा तो रखनी ही पड़ेगी?
उत्तर - श्रीभगवान् की प्राप्ति की लालसा तो रखनी ही है। विषय, भोगों की लालसा का त्याग करना है। एक राम की आशा रख कर सभी विषय, भोगों की लालसा का त्याग करना है।

प्रश्नकर्ता- अनीता पेरिवाल जी
प्रश्न - श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिए श्री रामायण, श्री गीताजी जैसे कई पाठ करते हैं, पर गृहस्थ जीवन के कारण कई पाठ छूट जाते हैं। क्या करें उपाय बताइए?
उत्तर - आप न्यूनतम सङ्कल्प निर्धारित कीजिए। जैसे प्रतिदिन गीता जी के चार श्लोक का पठन। यदि आपसे सम्भव हो तो अधिक कर लें, पर न्यूनतम को छुटने न दें। बड़े सङ्कल्प कर लेने से अभ्यास छूट जाने की सम्भावना अधिक रहती है।
।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||